लोकोत्सवता

फाग

लोकोत्सब लोक का वह उत्सव है, जो लोक द्वारा लोकहित में आयोजित किया जाता है। सामूहिकता या सामूहिक भागीदारी उसकी पहली शर्त है। समूचा लोक एक विशिष्ट कर्म से गतिशील होकर अद्‌भुत एकता की बानगी पेश करता है और यह एकता केवल बाहर की नहीं है, वरन् भीतर की भी है। लोकोत्सव केवल उल्लास और आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं है, वरन् लोकसंस्कृति का अनूठा संस्थान भी है। उसका उद्‌भव और विकास लोकसंस्कृति के इतिहास का एक अंग है। एक छोटे से उत्सव से लेकर राष्ट्रीय लोकोत्सव तक की होली कीर यात्रा अपने-आप में एक महाकाव्य की कथा है।

प्राचीनता

बुंदलखेड में दीर्घकाल तक आदिम जातियों के उत्सव प्रचलित रहे। उस समय उत्सव किसी भी जाति की जातीयता की पहचान थे, इसीलिए आर्य उन्हें अन्यव्रताः (अन्य व्रतवाले) कहा करते थे। 'बाल-नक्खत्त' और 'गढ़' उन्हीं के लोकोत्सव थे। 'बाल-नक्खत्त' मूर्ख-सम्मेलन जैसा उत्सव था। गाँव के कुछ लोग एक समूह में गोबर-लपेटे, कीचड़-सने और मुखरँगे वेश में गालियाँ बकते हुए घूमते थे और द्वार-द्वार जाकर इच्छित वस्तु वसूलते थे। 'गढ़' उत्सव में एक चिकना और तेल-पिलाया लम्बा-मोटा खम्भ मैदान के बीचों-बीच गाड़ दिया जाता है। उसके सिरे पर गुड़ की पोटली लटकायी जाती है, जिसे तोड़ने को युवक खम्भे पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं। उस समय खम्भे के चारों ओर सोंटियाँ और लाठियाँ लिए खड़ी युवतियाँ उसे रोकती हैं। उनसे बचकर जो पोटली छोड़कर ले आता है, वह विजयी माना जाता है। कहीं-कहीं युवक को खम्भे के सिरे पर गुड़ की पोटली बाँधनी पड़ती है, तभी वह विजयी समझा जाता है। यह उत्सव बुंदेलखंड में रंगपंचमी को आज भी होता है।

नाग-वाकाटक काल में 'मदनोत्सव' शुरू हुआ। कामसूत्र में उसे 'सुवसंतक' कहा गया है। मूल रूप में यह ऋतूत्सव था, जो वसंत ऋतू के आगमन पर होता था। उसमें 'काम' की पूजा को महत्त्व मिला और वह 'मदनोत्सव' हो गया। 'काम' की पूजा आम के बौर और टेसू के फूल से की जाती थी और स्त्री-पुरुष उल्लसित होकर गीत गाते एवं नृत्य करते थे। 'कामसूत्र' में 'होलाका' नाम के एक उत्सव का उल्लेख है, जिसमें टेसू के फूलों से बना रंग एक-दूसरे पर डालने की प्रथा थी। एक क्रीड़ा थी-उदकक्ष्वेड़िका अथवा शृंग-क्रीड़ा, जिसमें खोखले बाँस या सींग में पानी भरकर सिंहनाद के समान शब्द करने की क्रिया रहती थी।

पौराणिक काल में होली के लोकोत्सव की नयी विधि-व्यवस्था बनी थी। नारद पुराण में फागुन की पूर्णिमा को होलिका-पूजन निश्चित किया गया। उसके अनुसार सब तरफ सेइ कट्‌ठी की गयी लकड़ियों के ढेर में आग लगाकर उसकी परिक्रमा तीन बार करना चाहिए। इस हेतु के लिए एक कथा जोड़ दी गयी, जिसके अनुसार भक्त प्रह्लाद को भयभीत करने के लिए होलिका नाम की राक्षसी को जलाया गया था। होलिका जलने के कई अर्थ प्रस्तुत किये गये और इस प्रथा का अनुसरण होने लगा। नृत्य-गीत और हास्य-उल्लास तथा स्वतंत्र अभिव्यक्ति उसकी विशेष पहचान बने। अनेक प्रकार के रंग, अबीर, गुलाल प्रयुक्त करने की छूट दी गयी। इस तरह एक समन्वयकारी दृष्टि ने सबको

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

होलिकोत्सव में ढाल दिया।

चन्देल वसन्तोत्सव और फाग का जन्म

चंदेलनरेश मदनवर्मन् के राज्यकाल (लगभग ११२८-६४ई.) में वसंतोत्सव का विवरण जिन मण्डन के 'कुमारपाल प्रबंध' में मिलता है। वसंत और आन्दोलक रागों के गीत, दिव्य श्रृंगार से सजी स्त्रियाँ, आमोद-प्रमोद में मस्त आकर्षक युवक, कपूर, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, चंदनादि से गंधित मार्ग, संगीत से गुंजित प्रत्येक भवन और देव-पूजन से निनादित प्रत्येक मंदिर। घर-घर में सुंदर पक्वान्न और भोजन के बाद ताम्बूल-सेवन। कपूर के चूर्ण से मानाया जाता धुलिपर्वोत्सव। यह है चंदेलकाल की उत्सवी चेतना। गुजरात-नरेश सिद्धराज के सुयोग्य मंत्री और शत्रु चंदेल की गतिविधि का पता लगानेवाले गुप्तचर की जबानी। साक्षी है चंदेलनरेश परमर्दिदेव के अमात्य वत्सराज द्वारा रचित 'हास्यचूड़ामणि' प्रहसन का वसंत-वर्णन। इतिहासकार अल्बेरूनी ने भी उत्सवों की सूची में वसंतोत्सव को प्राथमिकता दी है।

इसी पृष्ठभूमि की कोख से जन्मी थी सखयाऊ फाग। पिता थे अपभ्रंश के लाड़ले छंद दोहा, जिनकी कीर्ति नौवीं-दसवीं शती से काव्यजगत् में छा गयी थी। 'दिवारी' उसकी जेठी बहिन थी, जो गोपगिरि (ग्वालियर) के गोपों में रम गयी थी। महोत्सवनगर (महोबा) के गोरखगिरि (गुखार पर्वत) की वादियों में घूमती उसकी माँ 'साखी' ने उसे बहुत रोका, पर युवा फाग की अल्हड़ उमंगें उस विरागी बंधन की देहरी लाँघकर चल दीं। महोत्सवनगर, खजुराहो, कालिंजर आदि की सजी-धजी गलियों से ऊबकर गाँवों की चौपालों में उसकी तान गूँज उठी। फिर गयी वह गोपगिरि अपनी जिज्जी से मिलने और वहाँ उसकी लोकरागनी इतनी प्रसिद्ध हुई कि सूर, नंददास जैसे कवियों ने उसे अपना लिया।

बुंदेली लोकगायकी की परख पैनी आँख से करें, तो स्पष्ट हो जायेगा कि दिवारी गीत में साखी-गायन के बाद वाद्यों की ध्वनि एक पंक्ति बनाती है, जबकि सखयाऊ फाग में शब्दों की ही पंक्ति खड़ी हो गयी और एक नयी लोकगायकी का अविर्भाव हुआ। इसी तरह सखयाऊ फाग की दुम या लटकन को जब टेक की तरह प्रयुक्त किया गया और दोहे या साखी को अंतरा की तरह संयोजित, तब 'राई' का अवतरण हुआ। वसंत और होली की बेड़नी को 'राई'इ तनी भायी कि वह उसी की हो गयी।

सखयाऊ और राई-दोनों बुंदेली लोककाव्य के आदिकाल की हैं। सखयाऊ फाग मध्ययुग में प्रचलित न रह सकी, पर राई तो आज भी सोलह वर्ष की नवयुवती जैसी बनी-ठनी मन को मोह लेती है। दोनों की दो मुद्रायें देखें-

१. नयी गोरी नये बालमा, नयी होरी की झाँक।
ऐसी होरी दागियो, कुलै न आबै दाग।
सम्हर कें यारी करो मोरे बालमा।।
२. रंग डारो बचाय, रंग डारो बचाय,
चोली के फुंदना न बिगरें।

पहला उदाहरण सखयाऊ फाग का है, जिसमें गाँव की गोरी को कुल की चिन्ता है। वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहती, जबकि दूसरे उदाहरण में 'राई' की नायिका को केवल फुँदना की चिन्ता है और वह उनके मिस

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

नायक को पूरी छूट दे देती है। आखिर होली है न। होली तो सभी खेलती हैं। स्वकीया और परकीया-दोनों। दोनों के अपने-अपने रंग हैं, अपने-अपने ढंग।

तोमर युग में संगीत का उत्कर्ष और पदशैली की फाग

तोमर-काल में ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र बना। देसी संगीत ने एक नयी क्रान्ति की और विष्णुपद एव ध्रुवपद नूतन गायकी और लोकभाषा का सहारा लेकर देश के कोने-कोने में छा गये। लोकगायकी में भी नयी रवानी और नूतन ध्वन्यात्मकता आयी। बुंदेलखंड की रियासतों के दरबारों में शास्त्रीय शैली की रागबद्ध फागों की तानें गूँजीं, पर उनका प्रचलन लोक में न हो सका। इतना अवश्य है कि लोकसंगीत में ढली पदशैली की फागें वसंत और होली के लोकोत्सवों में गायी जाने लगीं। दूसरी विशेष बात थी कृष्ण, राधा और गोपियों के लोकीकरण की, जिससे गाँव की गोरी या तो राधा हो गयी या गोपी और गाँव का हुरियारा छैल कृष्ण हो गया। कृष्ण रंग डालने के लिए कटिबद्ध और गोपी उन्हें बार-बार रोकती हुई, पारिवारिक मर्यादाओं का स्मरण कराती हुई-

मोपै रंगा न डारौ साँवरिया, मैं तो ऊसई रंग में डूबी लला।
काये को जो रंगा बनायो काये की पिचकारी लला ?
केसर डार रस रंगा बनायो हरे बाँस पिचकारी लला।
भर पिचकारी सन्मुख मारी भींज गयी तन सारी लला।
जो सुन पाहें ससुरा हमारे आउन न दैहें बखरियन लला।
जो सुन पाहें जेठा हमारे छूवन न दैहैं रसुइया लला।
जो सुन पाहें सैयाँ हमारे आउन न दैहें सिजरियन लला।।

भक्ति-आंदोलन और ब्रज के रसिया का आगमन

भक्ति-आंदोलन का केन्द्र ब्रज बना और ब्रज का रसिया बुंदेलखंड आया। रसिया कृष्ण तो यहाँ पहले से था, जिसे ६वीं शती के देवगढ़ (जिला ललितपुर) के दशावतार मंदिर और १०वीं-११वीं शती के खजुराहो (जिला छतरपुर) के लक्षमण मंदिर में उत्कीर्ण किया गया था। फाग का रसिया कृष्ण तो १६वीं-१७वीं शती में आया, जब ब्रज और बुंदेलखंड का सम्पर्क हुआ और संस्कृति का आदान-प्रदान होने लगा। ओरछानरेश मधुकरसाहि के राज्यकाल (१६वीं शती के उत्तरार्द्ध) में पारस्परिक संबंधों का सूत्रपात हुआ था, जब गोस्वामी बिट्ठलनाथ उन्हें अपने मत में दीक्षित करने ओरछा आये थे। और भी कई उदाहरणों के साक्ष्य इतिहास में मिलते हैं। फलस्वरूप रसिया जैसे फाग गीतों का प्रभाव स्वाभाविक था। बुंदेली ने ब्रजी के रसिया को आत्मसात् तो किया, पर काफी परिवर्तन के साथ। बुंदेली के रसिया की लय और गायन शैली कहीं बुंदेली लोकगीत बिलवारी की तरह है, तो कहीं लेद के ताल-स्वरों में बँधी। बालवारी के साथ जुड़ने वाली लटकनियाँ 'अरे हाँ' या 'अरे हाँ हाँ री' का प्रयोग कर उसी पुराने लोकगीत की धुन में अन्य फागें भी बनीं, जो अधिकांशतः भक्तिपरक थीं, लेकिन रसिया श्रृंगारप्रधान है। यहाँ एक बुंदेली रसिया प्रस्तुत है-

राधा खेलें होरी हो, मनमोहन के साथ, मोरे रसिया।
अरे कै मन केसर गारी हो, अरे कै मन उड़त गुलाल, मोरे रसिया।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अरे नौ मन केसर गारी हो, अरे दस मन उड़त गुलाल, मोरे रसिया।
अरे कौना की चूनर भींजी हो, अरे कौना की पंचरंग पाग, मोरे रसिया।
अरे राधा की चूनर भींजी हो, अरे किसना की पंचरंग पाग, मोरे रसिया।।

लोचन आँजहिं फगुआ मँगाइ

तुलसीकृत 'गीतावली' के उत्तरकांड (पद संख्या-२२) में राजसी फाग का वर्णन है, क्योंकि कवि पहली पंक्ति में 'खेलत वसंत राजाधिराज' कह देता है। लेकिन वह बुंदेलखंड की 'फगुआ माँगने' की अनोखी लोकरीति छोड़ नहीं पाता। 'गीतावली' में पंक्ति है-'लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ', जबकि होना चाहिए-'लोचन आँजें फगुआ मँगाइ।' मँगाइ में जो व्यंजना है, वह मनाइ में कहाँ। असल में, कवि ने दो-तीन पंक्तियों में फाग की आंचलिकता के रंगीन चित्र लिख दिये हैं-

लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। छाँड़हिं नचाइ हा-हा कराइ।।
चढ़े खरन्ह विदूषक स्वाँग साज। करें कूट निपट गइ लाज भाज।।

इस अंचल में फाग की एक अनोखी रीति है। भौजी देवर को एक पटे (काष्ठपट्टिका) पर बैठाकर साड़ी और चुनरिया ओढ़ा देती है। पैरों में महावर, आँखों में काजल, मस्तक पर बूँदा आदि से रंजित और अलंकृत कर कपोलों पर गुलाल मलती है और रंग से सराबोर करती हुई फगुआ माँगती है। देवर फगुआ के रूप में मिष्टान्न, आभूषण, वस्त्रादि भैंट करता है। विवाह में समधिनें इसी तरह समधियों से 'फगुआ' खेलती हैं। फाग में पुरुषों का भाग भी कम नहीं है। वे गधों पर सवार होकर तरह-तरह के स्वाँग रचते हैं और कूटोक्तियाँ कहकर मन की रसिकता बगरा देते हैं। दोनों तरफ से अबीर और रंग, कुमकुमे और पिचकारियाँ तथा गीतों के बोल घुलते रहते हैं। फिर भी इस युग के लोककाव्य में मर्यादा का उल्लंघन नहीं है। होली की रागिनी में कृष्ण ही नहीं, राम-लक्ष्मण भी डूबे हैं-

बलि के द्वारें मची होरी, राजा बलि के।
कौना के हाँतै ढुलकिया सोहै, कौना के हाँतै मँजीरा।
राम के हाँतै ढुलकिया सोहै, लछमन के हाँतै मँजीरा।
कौना के हाँतै रँग की गगरिया, कौना के हाँतै अबीर झोरी।
राम के हाँतै रँग की गगरिया, लछमन के हाँतै अबीर झोरी।
राजा बलि के द्वारें मची हीरी, राजा बलि के...।

फाग की लीला और 'लाल' फाग

अठाहरवीं शती के पूर्वार्द्ध के प्रसिद्ध कवि बख्शी हंसराज ने अपने ग्रंथ-'सनेह-सागर' में फाग की लीला का वर्णन किया है, जिसमें राधा और कृष्ण अपने-अपने दल लाकर फाग खेलते हैं। फाग में स्त्रियों और पुरुषों का लोकगीत गाना, पुरुषों का स्वाँग रचना, स्त्रियों पर अबीर-गुलाल घालना, पिचकारियों से रंग छोड़ना, स्त्रियों का हरे बसेंड़ा (बाँस की

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

छड़ियों) से पुरुषों को तितस-बितर करना, पुरुषों का जेरी लगाकर अड़े रहना, दोनों ओर से गीतों द्वारा संवाद, राधा का चंद्रावलि को कृष्ण के पकड़ने के लिए बीड़ा देना, छल-बल से कृष्ण को पकड़कर नेत्रों में काजल लगाना और फगुआ माँगना (कान पकर कर कुँवर कान्ह के फिर-फिर फगुआ माँगै।) तथा कृष्ण का यह कहने पर कि 'अपने मन माने के फगुआ जो चाहै सौ लीजै' उन्हें छोड़ देना आदि की कथा बुंदेली-फाग परम्परा की नयी कड़ी है।

इस कड़ी का लोकगीत है 'लाल फाग', लाल से जुड़ने वाली लाल फग। 'लाल' शब्द फाग की हर पंक्ति के अंत में लगकर एक अनोखा लावण्य भर देता है। उसमें होली के लाल रंग की लालिमा, लाल (नायक) के अनुराग (लाल) की लालसा, लाला (लाल) और भौजी के प्रेम का लालित्य और लाल (माणिक्य) का लावण्य सब कुछ मिलकर एक हो गया है। लाल कृष्ण से अधिक जुड़ा रहा, इसलिए भक्तिकाल से रीतिकाल तक आते-आते अपनी लम्बी यात्रा में अनहोने कमाल कर गया। बुंदेली फाग की गायन-शैली में एक नया मोड़ लाने में पूरी तरह सफल हो गया। पदशैली की शास्त्रीय फाग लोकसंगीत से जुड़कर नया जीवन पा गयी। इस तरह 'लाल फाग' का आविर्भाव पदशैली की फाग से हुआ था और वह पूरे मध्ययुग में छायी रही। एक उदाहरण देखें-

दोई नैना के मारे हमारे, जोगी भये घरबारे लाल।
जोगी भये घरबारे हमारे, जोगी भये पिये प्यारे लाल।
अरे, जोगी भये पिय प्यारे हमारे, जोगी भये घरबारे लाल।
अंग भभूत बगल मृगछाला, सीस जटा लिपटाने, हमारे..।
हाँत लयँ कुंडी बगल लयँ सोंटा, घर-घर अलख जगाबें, हमारे..।

उक्त फाग में टेक को विभाजित कर दुहराया गया है और बाद में 'लाल' जोड़ दिया गया है। 'जोगी भये घरबारे हमारे' और 'जोगी भये पिय प्यारे' को दुगुन-तिगुन में गाया जाता है। फिर अंतरा की पहली अर्द्धाली को दुहरा कर दूसरी अर्द्धाली में टेक का कुछ अंश मिलाकर उसी लय में गाते हैं। कभी-कभी जब अंतरा का तुकांत नहीं मिलता, तब 'लाल' तुकान्त का काम करता है। यह गायकी अपनी मधुरता के कारण आज तक जीवित है।

'लला फिर आइयो खेलन होरी' और छंदयाऊ फाग

इस अंचल के प्रसिद्ध कवि पद्माकर का एक छंद और उसकी एक पंक्ति का प्रबंध-'नैन नचाइ कहो मुसकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।' -छंद की महिमा है या प्रबंध की ? जगद्विनोद में गुलाल, अबीर और रंग की वर्षा के कई दृश्य अंकित हुए हैं। हुरियारों का घोष, धमार की धुन में गायन, पिचकारी की घालन, गारियों की कहन, स्त्रियों का फगुआ लेना, बात-बात में बाबा की शपथ आदि कुछ बुंदेली फाग के चित्र हैं, जो कभी पद्माकर ने लिखे और कभी बोधा एवं ठाकुर ने। बोधा ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'को बरनै जो लखो इन आँखिन फागुन मास को धूमर धस्सा।' कहाँ एक तरफ धूमर धस्सा (ऊधम) और कहाँ दूसरी तरफ खुला आमंत्रण-'लला फिर आइयो खेलन होरी।'

छंदों का कमाल रहा इस युग में। छंदयाऊ फाग भी अपने उत्कर्ष पर रही। वैसे तो छंदयाऊ और आख्यानक फागों की रचना १२वीं-१३वीं शती से हुई थी, पर लिखित फागें नष्ट हो गयी थीं। १५वीं शती में दोहा के साथ रोला छंद

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

जोड़कर नये प्रकार की फाग ग्वालियर में आयी थी। १६वीं शती में लावनी का विकास हुआ, जिसने फागकारों को अपनी ओर खींचा। लावनी की रंगतों और उनके तीव्र आरोह-अवरोह वाले स्वर-संधान ने फाग-गायकी पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। फलस्वरूप लावनी की फागों का विकास हुआ। पहले टेक होती है, फिर छंद-संगीत के नाम से विभिन्न छंदों की योजना रहती है। दोहा, सोरठा, लावनी, कवित्त, सवैया आदि छंद प्रमुख रूप में प्रयुक्त होते हैं। उसके बाद उड़ान, फिर टेक और इस तरह रचना का एक चक्र पूर्ण होता है। उसमें विष्य की पूर्णता के लिए कई चक्र रहते हैं।

छंदयाऊ फाग दीर्घ प्रगीत का आनंद देती है। अखाड़े या फड़ पर होड़ का प्रमुख आधार छंदयाऊ फाग ही है। काव्यत्व और संगीत का जितना सुंदर समन्वय इन फागों में दिखाई पड़ता है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता। शास्त्रीयता और स्वच्छंदता का मेल भी इन फागों की विशेषता है। अपनी अलग गायन-शैली और निर्धारित लय का यह फागरूप निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

टेक- ब्रज में हो रई फाग सुहाई, चलो देखिये भाई।
छंद- जमुना के तीर, गोपिन की भीर, मारत अबीर, भर-भर झोरन।
लई पिचक खींच, मच रई कीच, ब्रज बीच-बीच, गलियन खोरन।
उड़ान- रंग की मार मचाई।
टेक- भये सराबोर गोप उर गोपी, रये सकल मिल गाई।।

उक्त फाग आज गाई जाती है। पहले छंदयाऊ फाग केवल एक छंद पर आधारित रहती थी, पर आज की छंदयाऊ फाग कई छंदों पर लोकसंगीत के एक निश्चित ढाँचे में बँध गई है। लोकधुनों की थोड़ी-सी भिन्नता से स्वाँग, ख्याल, रजपूती आदि फागें प्रचलित हो गयीं।

लाल नयी नौखी होरी खिलाईः चौकड़िया की नयी रंगत

रामरसिक भक्त महारानी वृषभानुकुँवरि की लोककविता (१८७५-१९०६ ई.) की यह पंक्ति नयी होरी की उद्घोषणा करती है। यह नवीनता चतुर्मुखी है। पहली तो यह कि रसिक भक्तों की कविता लोक से जुड़ी और उन्होंने लोकोत्सवों- विशेष रूप में होली पर लोकछंदों में बहुसंख्यक रचनाएँ लिखीं। रसिकता के कारण कृष्ण की क्या कहें, राम तक लंगर छैल हो गये। दूसरी नवीन दिशा यह थी कि होली गीतों में संघर्षपरक राष्ट्रीयता भी प्रतिबिम्बित होने लगी। बाँदा के नवाब शमशेर बहादूर द्वितीय (१८०२-२३ई.) के अंग्रेजी सेना से संघर्ष की स्मृति हुरयारे गा उठे-'होरी मच रयी जमुना के घाट, दौनउँ तरफ फौजन के ठाट। उतै सें लड़ें गोरा फिरंगी, इतैं सें अकेलौ नवाब।'

सबसे महत्त्वपूर्ण तीसरी दिशा थी-अंग्रेजों और जमींदारों के शोषण से उत्पन्न निराशा के विरुद्ध लोकोत्सवी उल्लास जगाने का प्रयास, जिससे होली सामाजिक चेतना और एकता का माध्यम बनी। चौथी नवीनता में लोकगीतों के पुनरुत्थान की सर्वथा नयी कोशिश थी, जिसका नेतृत्व लोककवि ईसुरी ने किया। परम्परित होली और होली के लोकगीतों में नये प्राण फूँकने का श्रेयइसुरी को ही है। उसने चौकड़िया फाग का आविष्कार कर फाग की वस्तु और शैली-दोनों में परिवर्तन ला दिया और फागगायकी को एक नया आयाम दिया। चौकड़िया के आधार पर ही गंगाधर व्यास ने खड़ी फाग की स्थापना की और एक पुष्ट एवं परिष्कृत रूप देकर उसे साहित्यिक मंच पर बैठाया। यहाँ एक चौकड़िया का उदाहरण काफी है-

ऐसी पिचकारी की घालन, कहाँ सीक लई लालन।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

कपड़ा भींज गये बड़-बड़ के, जड़े हते जरतारन।
अपुन फिरत रंग रस में भींजे, भिंजै रये ब्रजबालन।
'ईसुर' आज मदन मोहन ने कर डारी बेहालन।।

चौकड़िया का उद्‌भव 'लाल फाग' से हुआ है। उसकी गायन-शैली भी उसी फागरूप की ऋणी है। चौकड़िया के प्रथम चरम में १६ मात्राओं पर यति है और उसका तुकांत वर्ण ही हर चरण के तुकांत में आना जरूरी है। इस रूप में अनुप्रास का सौंदर्य आकर्षक होता है। प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, इस कारण विद्वानों ने 'सार' (नरेन्द्र और ललितपद भी) छंद को चौकड़िया का आधार माना है, लेकिन मेरा उनसे निवेदन है कि लोककवि छंद को सामने रखाकर रचना नहीं करता। चौकड़िया की लय ही उसकी गायकी का मेरुदंड है।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.